२ | कर्म और जीव का सम्बन्ध*

□ पं० रत्न श्री हीरा मुनि

संसार एक रंगमंच है :

संसार एक रंगमंच है। यहाँ नाना प्रकार के पात्र हमें दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें कोई अमीर है तो कोई गरीब, कोई राजा है तो कोई रंक, कोई सबल है—तो कोई निर्बल, कोई विद्वान् है तो कोई मूर्ख। किसी का सर्वत्र अभिनन्दन-अभिवन्दन है तो किसी को दुत्कार-फटकार। किसी के दर्शन को आँखें तरसतीं, टकटकी लगाये पंथ निहारतीं तो किसी को फूटी आँख से भी देखना पसंद नहीं, कोई कामदेव-रति तुल्य तो कोई कौवा तवा की तरह भद्दा-काला। कोई साँचे में ढालकर फुरसत में बनाया हो ऐसा रूपवान तो कोई बेढ़ब, बेडोल और ऊँट, गर्दभवत् भद्दी आकृति वाला। कोई कोमल, सरल तो कोई कर्कश-कठोर, टेढ़ा-मेढ़ा अष्टावक्र की तरह। किसी को 'वन्समोर, प्लीज' कहकर कोयलवत् और तान छेड़ने को कहा जाता है तो किसी को 'बैठ जाओ', 'तुमको किसने खड़ा किया', 'क्यों कौअे और गधे की तरह गला फाड़ रहे हो', 'यह फटा बाँस और कहीं जाकर बजाना', ऐसा कहा जाता है। किसी की लात भी अच्छी तो किसी की भली बात भी खराब।

मात्र मनुष्य की ही बात नहीं। यह जीव कभी सुख-सागर में निमग्न देव बना तो कभी भयंकर भयावने भय और असह्य-दुःख का घर नारकी बना। इस तरह गति, जाति आदि की बाहरी भिन्नता ही नहीं, भीतरी-गुणस्थान, लेश्या, पुण्यानुबंधी पुण्य आदि की दृष्टि से असंख्य भेद शास्त्रकारों ने किये हैं।

विभिन्नता-विचित्रता का कारण कर्म :

आखिर, इस विभिन्नता-विचित्रता, विभेद और विसदृश्यता का कारण क्या है? विविधता-विषमता-अनेकता के अनेकों कारण एवं समाधान प्राप्त होते हैं। वैदिक परम्परा इस भिन्नता का कारण ईश्वर को मानती है तो कोई सामाजिक अव्यवस्था बताते हैं। किन्हीं का मन्तव्य है कि यह माता-पिता का दोष है तो कोई आदत, कुटेव, अज्ञानता, स्वार्थ, वासनामयी वृत्ति को कारण मानते हैं।

---

*मुनि श्री के प्रवचन से। पं० शोभाचन्द्र जैन द्वारा सम्पादित।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन इस विभिन्नता का कारण कर्म मानता है। जैन मान्यतानुसार जो जैसा करता है, वही उसका फल भोगता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी के कर्म-फल का अधिकारी नहीं हो सकता, जैसा कि कहा है—

"स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकम् तदा ॥"

उपर्युक्त तथ्य को ही हिन्दी कवि ने निम्न प्रकार स्पष्ट किया है—

"अपने उपार्जित कर्मफल को जीव पाते हैं सभी—
उसके सिवा कोई किसी को कुछ नहीं देता कभी।
ऐसा समझना चाहिये एकाग्र मन होकर सदा,
दाता अपर है भोग का इस बुद्धि को खोकर सदा ॥"

कर्म के अनेक अर्थ :

कर्म शब्द अनेकार्थक माना गया है। काम-धंधे के अर्थ में कर्म शब्द का प्रयोग होता है। खाना, पीना, चलना, फिरना आदि क्रिया का भी कर्म शब्द से व्यवहार किया जाता है। इसी प्रकार कर्मकाण्डी मीमांसक यज्ञ आदि क्रिया-कांड के अर्थ में, स्मार्त विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णों तथा ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमों के लिये नियत किये गये कर्म रूप अर्थ में, व्याकरण के निर्माता लोग कर्त्ता द्वारा की जाने वाली क्रिया, जिस पर कर्त्ता के व्यापार का फल गिरता है, इस अर्थ में, और नैयायिक लोग उत्क्षेपण-अवक्षेपण आदि पाँच सांकेतिक कर्मों के संदर्भ में कर्म शब्द का प्रयोग करते हैं। परन्तु जैन दर्शन में कर्म शब्द एक विशेष अर्थ में व्यवहृत किया जाता है। जैन दर्शन की मान्यतानुसार कर्म नैयायिकों या वैशेषिकों की भाँति क्रिया रूप नहीं है किन्तु पौद्गलिक द्रव्य रूप है। आत्मा के साथ प्रवाह रूप से सम्बन्ध रखने वाला एक अजीव द्रव्य है।

कर्म और जीव का सम्बन्ध :

भगवान् महावीर ने संसार के अनन्त-अनन्त पदार्थों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया है—जीव और अजीव या जड़ और चेतन। जीव के साथ जड़ का संयोग-सम्बन्ध ही संसार में विविधता, विचित्रता और विभिन्नता उत्पन्न करता है। यदि विभिन्नता का कारण मात्र चेतन आत्मा होती तो सिद्ध अवस्था में भी विभिन्नता होती किन्तु ऐसा नहीं है। इसी प्रकार मात्र जड़ भी विचित्रता-विभिन्नता का कारण नहीं है जैसे बिना जीव का अलोकाकाश। अतः मिट्टी और पानी के संयोग की तरह जड़ और चेतन के संयोग को ही जैन दर्शन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गति, जाति, योनि आदि की विभिन्नता का कारण मानता है। वह उसे ईश्वर, ब्रह्म या शक्तिशाली देवों का कार्य नहीं मानता है। प्रश्न होता है कि जीव का अजीव कर्म से सम्बन्ध कब से है ? जैन दर्शन इस सम्बन्ध को खदान से निकले सोना और मिट्टी के सम्बन्ध की तरह अनादि मानता है।

सम्बन्ध दो तरह के होते हैं समवाय सम्बन्ध और संयोग सम्बन्ध। गुण-गुणी का सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध है जो अलग नहीं किया जा सकता। जैसे मिश्री और मिठास, अग्नि और उष्णता, नमक और खारापन, जीव और ज्ञान, सूर्य और प्रकाश। लेकिन जीव और जड़ कर्म का सम्बन्ध संयोग-सम्बन्ध है जैसे—दूध और पानी, सोना और मिट्टी, लोहा और अग्नि, तार और बिजली, शरीर और जीव। जीव और कर्म का सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध न होकर संयोग सम्बन्ध है।

कर्म के सम्बन्ध में एक प्रश्न और उठता है कि यदि कर्म जड़ है तब जड़ कर्म में किस प्रकार फल देने की शक्ति है। प्रत्यक्ष में हम देखते हैं जड़ पदार्थों का अन्य जड़ पदार्थों पर भी संयोग के कारण प्रभाव दिखायी देता है जैसे पारस लोहे को स्वर्ण रूप में परिवर्तित कर देता है। वस्त्र विभिन्न रंगों के परमाणुओं का संयोग पाकर चित्र-विचित्र रंगों को प्राप्त होता है, इस तरह जड़ में भी संयोग शक्ति के कारण विभिन्नता आती है तो फिर जड़ चेतन का संयोग पाकर अधिक शक्तिवाला बन जाय, उसमें कोई आश्चर्य नहीं ? स्पष्ट ही हम देखते हैं—भंग शिला पर घोटी जाकर शिला में नशा नहीं पैदा कर, पीने वाले चेतन में अपना अत्यधिक प्रभाव दिखाती है।

जैन दर्शनानुसार कर्म द्रव्य रूप व भाव रूप से दो प्रकार का है। जीव से सम्बद्ध कर्म पुद्गल द्रव्य कर्म और द्रव्य कर्म के प्रभाव से होने वाले जीव के राग-द्वेष रूप भाव, भाव कर्म है। राग-द्वेष रूप चिन्तन से आत्म प्रदेशों में एक प्रकार की हलचल-कंपन होती है। इस प्रकार परिणाम स्वरूप कर्म पुद्गल आकृष्ट हो चिपक जाते हैं। जैसे केमरा आकृति को, रेडियो ध्वनि को और चुम्बक लोह-कणों को खींचता है, वैसे ही परिणाम द्रव्य कार्मण वर्गणा को आकर्षित करता है, कर्म में स्वयं सुख-दुःख प्रदान करने की शक्ति नहीं है किन्तु यह शक्ति चेतन द्वारा प्रदत्त होती है। चेतन का संयोग पाकर कर्म की शक्ति बलवतर हो जाती है। जिसके प्रभाव से देवेन्द्र, नरेन्द्र, धर्मेन्द्र तीर्थंकरों को भी कठोर यंत्रणा भोगनी पड़ी।

आत्मा कर्म के साथ किस प्रकार आबद्ध होती है, यह तथ्य निम्न दृष्टान्त द्वारा सुगमतया समझा जा सकता है। कल्पना कीजिये जैसे आपने एक गाय के गले में रस्सा डाल कर उसे बाँध लिया। वह गाँठ गाय के नहीं, चमड़े के नहीं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रस्से से रस्से के साथ लगी है और गाय बंधी हुई है। आत्मा और कर्म के साथ भी यही बात है। कर्म की गाँठ कर्म के साथ लगी है, आत्मा के साथ नहीं, किन्तु आत्मा बन्धन से फँस गयी है। आत्मा अरूपी और कर्म रूपी है, अरूपी रूपी के साथ कभी सम्बन्ध नहीं करता। विचित्रता यही है कि कर्म के साथ कर्म के बन्धन से आत्मा बन्ध रही है। जैसे गाँठ खुल जाने से गाय मुक्त हो जाती है उसी प्रकार कर्म की गाँठ खुल जाने पर आत्मा भी स्वतंत्र और कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाती है।

मानव के पास बुद्धि रूप ज्ञान और आचरण रूप क्रिया का ऐसा अनुभव रूप बल, शक्ति है कि वह कठिन, गुरुतर, दुष्कर और दुर्भेद्य को भी आसान कर सकता है। जीव अपने प्रयत्न विशेष से, पुरुषार्थ से कर्म को पृथक् कर सकता है, यथा—

"मलं स्वर्णगतं वह्नि, हंसः क्षीर गतं जलम्।
यथा पृथक्करोत्येव, जन्तोः कर्म मलं तपः।।"

अर्थात्- जैसे स्वर्ण में रहा हुआ मल अग्नि के ताप से, दूध और पानी हंस की चोंच से पृथक्त्व को प्राप्त होता है, उसी प्रकार कर्ममल तप से नष्ट हो जाता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप द्वारा यह जीव कर्म का पृथक्-करण कर सकता है। हमारा जीवन विघ्न, बाधा और विपत्तियों से भरा पड़ा है। इनके कारण हमारी बुद्धि अस्थिर हो जाती है। एक ओर बाहरी परिस्थिति प्रतिकूल होती है तो दूसरी ओर घबराहट, चिन्ता और पाप के प्रकटीकरण से अंतरंग स्थिति को हम स्वयं अपने हाथों से बिगाड़ लेते हैं। ऐसी अवस्था में—"विपत्तिकाले विपरीत बुद्धिः" होने पर भूल पर भूल होना स्वाभाविक है। अंततोगत्वा हम आरम्भ किये कार्य को निराश हो छोड़ देते हैं। ऐसे समय में कर्म सिद्धान्त शिक्षक का कार्य करता है, पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाता है। वह आत्मा को धीरज बंधाता है। दुःख में घबराहट और सुख में संयत कर, उच्छृंखल व उद्दण्ड होने से बचाता है। इस तरह जैन दर्शन में प्रतिपादित कर्म सिद्धान्त पुरुषार्थ पर अवलंबित है।

• □ •

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org